**यंत्र नहीं है, [मन्त्रः न] अनेक तरह के अक्षरों के बोलनेरूप मंत्र नहीं है, [यस्य] और जिसके [मण्डलं न] जलमंडल, वायुमंडल, अग्निमंडल, पृथ्वीमंडलादिक पवन के भेद नहीं हैं, [मुद्रा न] गारुडमुद्रा, ज्ञानमुद्रा आदि मुद्रा नहीं हैं, [तं] उसे [अनन्तम्] द्रव्यार्थिकनय से अविनाशी तथा अनंत ज्ञानादिगुणरूप [देवम् मन्यस्व] परमात्मदेव जानो।**

**भावार्थ :- अतीन्द्रिय आत्मीक-सुख के आस्वाद से विपरीत जिह्वाइंद्री के विषय (रस) को जीत के निर्मोह शुद्ध स्वभाव से विपरीत मोहभाव को छोड़कर और वीतराग सहज आनंद परम समरसीभाव सुखरूपी रस के अनुभव का शत्रु जो नौ तरह का कुशील उसको तथा निर्विकल्पसमाधि के घातक मन के संकल्प-विकल्पों को त्यागकर हे प्रभाकर भट्ट, तू शुद्धात्मा का अनुभव कर। ऐसा ही दूसरी जगह भी कहा है - ''अक्खाणेति'' इसका आशय इस तरह है, कि इन्द्रियों में जीभ प्रबल होती है, ज्ञानावरणादि आठ कर्मों में मोह कर्म बलवान होता है, पाँच महाव्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत प्रबल है और तीन गुप्तियों में से मनोगुप्ति पालना कठिन है। ये चार बातें मुश्किल से सिद्ध होती हैं।।२२।।**

---

**वीर संवत् २५०२, ज्येष्ठ कृष्ण ९, रविवार**
**दिनांक-२०-०६-१९७६, गाथा-२२-२३, प्रवचन-१३**

---

२२ गाथा। परमात्मप्रकाश।

**२२) जाणु ण धारणु धेउ ण वि जासु ण जंतु ण मंतु।**
**जासु ण मंडलु मुद्द ण वि सो मुणि देउँ अणंतु।।२२।।**

आहाहा! **आगे धारणा, ध्येय, यन्त्र, मन्त्र, मण्डल, मुद्रा आदिक व्यवहारध्यान के विषय मन्त्रवाद शास्त्र में कहे गये हैं, उन सबका निर्दोष परमात्मा की आराधनारूप ध्यान में निषेध किया है।** आहाहा!

**अन्वयार्थ :- जिस परमात्मा के...** भगवान परमस्वरूप जो अनन्त आनन्द, ऐसी जो दिव्य शक्तिरूप स्वरूप, वह **कुम्भक, पूरक, रेचक नामवाली वायुधारणादिक,...** इनसे भी प्राप्त हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! देखो! **धारणादिक नहीं है,...** कोई धारणा या

कुम्भक, रेचक से प्राप्त हो, ऐसी वह चीज़ नहीं है, कहते हैं। आहाहा! इसमें यह सिद्ध करना है कि जो परमात्मस्वरूप ध्रुव नित्य है, उसका आश्रय करने से ही आत्मधर्म प्राप्त कर सकता है। उसे कोई व्यवहार के विकल्प हो तो ध्यान हो, ऐसा इनकार करते हैं। यहाँ सूक्ष्म बात है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** यहाँ इनकार करते हैं, दूसरी जगह....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अन्यत्र भी इनकार ही किया है। दूसरी जगह व्यवहार है, ऐसा बतलाया है। आहाहा! ऐसी बात है।

**मुमुक्षु :** उसे साधन कहा है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह साधन व्यवहार से, उपचार से कहा है। है नहीं, उसे निमित्त का सहचर देखकर (साधन कहा है)। आता है... ? यह सातवें अध्याय में आता है, टोडरमलजी (कृत) मोक्षमार्गप्रकाशक (में आता है)। ... ऐसा लिया है कि सर्वत्र यह लक्षण जानना। है न वहाँ? आहाहा! निश्चय सम्यग्दर्शन, वह तो स्व चैतन्यमूर्ति परमदेव अनन्त आनन्द का नाथ भगवान, उसके ध्येय और आश्रय से प्रगट होता है। उसे सच्चा समकित कहा जाता है। परन्तु साथ में देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प होता है। सहचर देखकर उपचार से उसे समकित का आरोप दिया, व्यवहार से। है नहीं।

**मुमुक्षु :** है नहीं और उपचार करके कहना....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यहाँ है, उसका उपचार करना है। माल तुलता है, साथ में बोरी तुलती है। कोथळा समझते हो? बोरी। चावल की बोरी होती है न? चार मण और ढाई सेर (ऐसा बोले)। तो चार मण तो चावल है, और ढाई सेर बोरी है। साथ में कहने में आता है। परन्तु वह बोरी कहीं चावल नहीं है। चावल ढाई सेर घटे तो वह बोरी कहीं पकाने में काम आवे?

**मुमुक्षु :** परन्तु चावल बोरी में तो रहते हैं न?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं। चावल चावल में रहते हैं। बोरी में नहीं और बोरी के कारण नहीं। ऐसी यह बातें! अभी तो लोगों को निमित्त से होता है... निमित्त से होता है।

अरे! प्रभु! यहाँ तो कहते हैं... आहाहा! यह धारणा कोई अन्दर रखे कि ऐसा है और ऐसा है और ऐसा है। उससे भी यह प्राप्त हो, ऐसा नहीं है। दूसरे प्रकार से कहें तो व्यवहाररत्नत्रय की धारणा जो विकल्प में होती है, उससे यह प्राप्त हो, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! वह निरालम्बी चीज़ ऐसी है कि उसके ध्यान में दूसरे की कोई अपेक्षा है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। कहा न?

द्रव्यसंग्रह की ४७ गाथा। '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणादि जं मुणी णियमा**' यह क्या कहते हैं? देखो न! दो प्रकार का मोक्षमार्ग कथनरूप है न इसलिए (दो प्रकार कहे), ध्यान में प्राप्त होते हैं। अर्थात्? आत्मा सीधा स्वभाव का आश्रय लेकर निश्चय सम्यग्दर्शन करता है। उसमें राग बाकी रहा उसे, ध्यान में भी राग बाकी रहा, उसे उपचार-व्यवहार कहा जाता है। आहाहा! ऐसी गजब चीज़, भाई! अभी तो यहाँ निमित्त से होता है और ऐसा है और वैसा है, झगड़े। इस व्यवहार का निमित्त है। इससे नहीं होता, ऐसा कहते हैं। निमित्त है न अन्दर। वह बाह्य निमित्त है। आहाहा! देखो!

**कुम्भक, पूरक, रेचक नामावली वायुधारणादिक नहीं है,...** इसमें कुछ नहीं। आहाहा! **प्रतिमा आदि ध्यान करनेयोग्य पदार्थ भी नहीं है,...** प्रतिमा सर्वज्ञ परमात्मा लक्ष्य में ले और फिर आत्मा की प्राप्ति हो, ऐसा है नहीं। है? **प्रतिमा आदि...** देव-गुर कोई **ध्येय (ध्यान करनेयोग्य) पदार्थ भी नहीं है,...** आहाहा! यह ध्येय अन्दर है ही नहीं। ध्यान तो पूर्णानन्द का नाथ अनन्त... पाठ है न? देखो न! '**मुणि देउँ अणंतु**' है? आहाहा! '**मन्यस्व देवमनन्तम्।**' अनन्त जिसका स्वभाव ऐसा भगवान आत्मा, उसे मान और जान, बस यह। आहाहा! निश्चय की बात सूक्ष्म है। **प्रतिमा आदि ध्यान करनेयोग्य पदार्थ भी नहीं है,...** अहिरन्त का ज्ञान लक्ष्य में ले। अरिहन्त ऐसे... ऐसे। वह भी जहाँ अन्तर आत्मा को पकड़ने में कोई साधन है नहीं। आहाहा! बहुत कठिन काम।

**जिसके अक्षरों की रचनारूप स्तम्भन मोहनादि विषयक यन्त्र नहीं है,...** ॐ ऐसे अन्दर रचे न? वह कोई वस्तु है नहीं। आहाहा! ऐसे ॐ और मन्त्र और भगवान का स्मरण, इससे आत्मा प्राप्त हो, ऐसा आत्मा है ही नहीं। मूल तो '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' यह बात सिद्ध करनी है। (समयसार) ११वीं गाथा। त्रिकाल भगवान अनन्त

ज्ञानमय प्रभु, परमात्मस्वरूप, नित्यस्वरूप, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। व्यवहार के आश्रय से और व्यवहार हो तो होता है, ऐसा नहीं है। ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया?

**अक्षरों की रचनारूप स्तम्भन मोहनादि विषयक यन्त्र नहीं है,...** आहाहा! **अनेक तरह के अक्षरों के बोलनेरूप मन्त्र नहीं है,...** ॐ और अरि अ, सि, आ, उ, सा। आते हैं न सब? ऐसे मन्त्रों-फन्त्रों का विकल्प भी वहाँ नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। परमात्मप्रकाश है न? निश्चय परमात्मस्वरूप जो है, उसे अनुभव करने के लिये इस किसी चीज़ की उसे आवश्यकता नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

**और जिसके जलमण्डल, वायुमण्डल,....** ज्ञानार्णव में आता है। अन्दर विचार करे कि समुद्र ऐसा है, वायु ऐसी है। उसमें आत्मा विराजता है। ऐसी जो ज्ञानमुद्रा इत्यादि मुद्रा भी नहीं। **उसे...** अब कहते हैं। **उसे...** अर्थात् कौन? भगवान आत्मा को '**अनन्तम्**' अनन्त की व्याख्या की अब। **द्रव्यार्थिकनय से अविनाशी...** आहाहा! वस्तुरूप से देखने पर द्रव्य अर्थात् वस्तु, उसे देखने पर वह अविनाशी चीज़ ऐसी की ऐसी अनादि-अनन्त पड़ी है। आहाहा! पाठ में '**मुणि देउँ अणंतु**' ऐसा आया न? उसे तू अनन्त जान। अनन्त को देवरूप से जान, ऐसा आया न? '**मुणि देउँ अणंतु**' अनन्त देव, उसे जान। यह अनन्त देव को जान की व्याख्या है। आहाहा!

**द्रव्यार्थिकनय से अविनाशी तथा अनन्त ज्ञानादिगुणरूप....** वस्तु भगवान आत्मा वस्तुदृष्टि से देखे, जिस नय को द्रव्य का प्रयोजन है, उस द्रव्य की दृष्टि से देखें तो वह अनन्त अविनाशी तत्त्व ऐसा का ऐसा है। आहाहा! ऐसी बात है।

**मुमुक्षु :** यह भाव....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भाव। वर्तमान भाव ऐसा पूर्ण है। आहाहा! अनन्त अर्थात् नाश न हो, यह तो अपेक्षित बात है। वस्तु वर्तमान अविनाशी वस्तु है। आहाहा!

**अनन्त ज्ञानादिगुणरूप....** भाव। उसे **जानो।** है न? '**देवम् मन्यस्व**' **परमात्मदेव जानो।** आहाहा! '**देवम्**' अर्थात् परमात्मदेव, '**मन्यस्व**' अर्थात् जानो। आहाहा! वस्तुरूप से अविनाशी ध्रुव स्वरूप, वह अनन्त अर्थात् नाश न हो ऐसी चीज़ है, उसे देवरूप से

अन्तर में जान। आहाहा! ऐसी बात है। ऐसे परमात्मस्वरूप में ध्यान में ध्येय उसे बना। आहाहा! ऐसा कहते हैं। परमात्मप्रकाश है न यह तो! '**देवम् मन्यस्व अनन्तम्**' जिसे धारणा ध्येय तन्त्र, मन्त्र नहीं, ऐसा जो भगवान आत्मा '**अनन्तम् देवम् मन्यस्व**' ध्रुव ऐसा देव आत्मा उसे जान। आहाहा!

अविनाशी भगवान परमानन्दमूर्ति प्रभु, वह देव दिव्य शक्तिवान है। वह देव है—परमात्मा है। उसे तू जान। उस पर दृष्टि दे। आहाहा! कठिन बात है। यह सब व्यवहारवाले कहते न, व्यवहार हो तो होता है और व्यवहार हो तो होता है। यहाँ तो इनकार किया है कि व्यवहार का तो निषेध हो जाता है। तब वह प्राप्त होता है। आहाहा! वीतरागमार्ग अलौकिक है। किसी लौकिक के साथ मिलान खाये, ऐसा नहीं है।

**मुमुक्षु :** यह ग्रन्थ बड़े-बड़े ऊँचे ग्रन्थ हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऊँचा अर्थात् जैसा है, वैसा है। जो चीज़ है, ऐसे शब्द हैं। परमात्मा, यह शब्द है। तो आत्मा परमात्मास्वरूप है, वह शब्द को बतलाता है। परन्तु जिसे जानने में शब्द का भी अवलम्बन नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

'**अनन्तम् देवम् मन्यस्व**' आहाहा! **अतीन्द्रिय आत्मीक-सुख के आस्वाद से विपरीत....** अतीन्द्रिय आत्मिकसुख का स्वाद जो अन्दर आना। आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय सुखस्वरूप ही है। अनन्त देव है। वह अतीन्द्रिय आनन्द अनन्त अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप... आहाहा! उसके सुख के आस्वाद से विपरीत **जिव्हा इन्द्रिय के विषय...** आहाहा! **( रस ) को जितने निर्मोह शुद्ध स्वभाव से विपरीत मोहभाव को छोड़कर....** आहाहा! परसन्मुख के विषय के रस को छोड़ और **निर्मोह शुद्ध स्वभाव से विपरीत मोहभाव को छोड़कर और वीतराग सहज आनन्द परम समरसीभाव सुखरूपी रस के अनुभव का शत्रु....** आहाहा! अस्ति-नास्ति करते हैं। **वीतराग सहज आनन्द परम समरसीभाव....** ओहोहो! ऐसा सुखरूपी रस उसके **अनुभव का शत्रु जो नौ तरह का कुशील उसको तथा निर्विकल्पसमाधि के घातक मन के संकल्प-विकल्पों को त्यागकर....** देखो! आहाहा!

व्यवहार के विकल्प हैं, वे निर्विकल्प समाधि को घातक हैं, ऐसा कहते हैं।

समझ में आया? यह कहता है कि व्यवहार साधक और निश्चय साध्य। किस अपेक्षा से? बापू! भाई! वीतराग मार्ग, वीतरागस्वभाव को प्राप्त करने में कोई पर की अपेक्षा है ही नहीं। ऐसा ही उसका स्वरूप है। आहाहा! बहुत सरस बात है! भगवान अतीन्द्रिय आनन्द सुखरूप, उसका जो स्वाद जो अतीन्द्रिय आनन्द, उससे विपरीत वह संकल्प-विकल्प है। आहाहा! व्यवहार के जितने देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प-राग, पंच महाव्रत का राग... आहाहा! शास्त्र पठन का राग, ऐसे भाव से रहित भगवान है। अन्दर भगवान अनन्त अतीन्द्रिय सुख के सागर से भरपूर देव, उसके अतीन्द्रिय स्वाद से विरुद्ध यह सब विकल्प हैं, कहते हैं। आहाहा! इन विकल्पों से प्राप्त हो, ऐसा नहीं है— ऐसा कहते हैं।

**मुमुक्षु :** शत्रु है....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बैरी है, शत्रु है। आहाहा! इसका सब झगड़ा अभी। ऐ... सोनगढ़वाले व्यवहार का लोप करते हैं। निमित्त से होता है, ऐसा नहीं मानते। स्याद्वाद चाहिए, कथंचित् निमित्त से होता है और कथंचित् (उपादान से होता है)। यहाँ तो कहते हैं, निमित्त से नहीं परन्तु व्यवहार से नहीं होता, सुन! व्यवहार, वह अन्तर का निमित्त है। ऐसी बात है, बापू! आहाहा!

ऐसा कहते हैं कि **निर्विकल्पसमाधि के घातक मन के संकल्प-विकल्पों को त्यागकर....** आहाहा! यह व्यवहार का विकल्प कि ऐसा आत्मा है और ऐसा ऐसे है और ऐसा वैसे है, ऐसा जो व्यवहार का विकल्प है, वह निर्विकल्प समाधि का घात करनेवाला है। वर्तमान पर्याय, हों! आहाहा! निर्विकल्पस्वरूप तो भगवान त्रिकाल है परन्तु उसके आश्रय से हुई निर्विकल्प समाधि, उसके यह शुभ विकल्प घातक हैं। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! देवचन्दजी! ऐसी बात है। इसके ख्याल के ज्ञान पर तो बात ले।

**हे प्रभाकर भट्ट! तू शुद्धात्मा का अनुभव कर।** देखा! यह व्यवहार के विकल्प को लक्ष्य में से छोड़ दे। शुद्धात्म अनन्तदेव... जिसके स्वरूप के भाव की मर्यादा नहीं, ऐसा जिसका स्वभाव आनन्ददल, ऐसा अनन्त देव, उसे जान। आहाहा! विकल्प-बिकल्प को छोड़ दे। विकल्प से निश्चय होगा, यह बात छोड़ दे। आहाहा! ऐसी बात है।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वस्तु ही ऐसी है, देखो न!

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पंच परमेष्ठी को माननेवाला, वह तो स्वयं विकल्प है। यह तो भगवान स्वयं पंच परमेष्ठीस्वरूप ही आत्मा त्रिकाल है। आहाहा! भाषा नहीं रखी?

'**अनन्तम् देवम् मन्यस्व**' आहाहा! भगवान परमात्मस्वरूप ही प्रभु है। वह अनन्त परमात्मस्वरूप, उसे जान। आहाहा! यह तो (समयसार) ११वीं गाथा का विस्तार किया है। ११वीं में कहा, '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' व्यवहार-फ्यवहार से वह नहीं मिलेगा। आहाहा! तब १२वीं गाथा में कहा है कि व्यवहार का उपदेश करना। इसलिए उसमें से यह अर्थ निकालते हैं। जो नीचे की भूमिका है, उसे व्यवहार का उपदेश देना। ऐसा है ही नहीं वहाँ भी। अरे! भगवान! समझ में आया? सबको यह उठाते हैं। साहूजी ने दिल्ली में उठाया था। बारहवीं गाथा में ऐसा कहा है।

**मुमुक्षु :** व्यवहार देसिदा?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** क्या लिया यह? टीका में क्या कहा है? व्यवहार उस समय जो पर्याय की अल्पता है, अशुद्धता है, उसे उस काल में उस प्रकार में उस समय को जानना प्रयोजनवान है। आदरणीय तो यह एक ही वस्तु है। त्रिकाल वस्तु परमदेव भगवान। समझ में आया? परन्तु व्यवहार है या नहीं उसे? कहते हैं। क्योंकि अपूर्ण दशा है, अभी अशुद्धता है, शुद्धता के अंश बढ़ते हैं, अशुद्धता के अंश घटते हैं। उन सबका उस-उस काल में जानना, यह व्यवहारनय को प्रयोजनवान कहा है। जानने के लिये प्रयोजन कहा है। आदर करने के लिये प्रयोजनवान है, (ऐसा नहीं कहा)। आहाहा! परन्तु ऐसी गजब बातें! शशीभाई! वहाँ तो ऐसा कहा है। भाई! तुझे महँगा लगे परन्तु बापू! ऐ प्रभु! तुझे तू महँगा लगे! आहाहा! वह चीज़-वस्तु पड़ी है। आहाहा! परन्तु यह बात लोगों को ऐसी लगे। पण्डितों को... आयेगा। आहाहा!

संकल्प-विकल्प जो है। आहाहा! संकल्प-विकल्प की व्याख्या हो गयी थी। पहले हो गयी है। अथवा अपने इसमें भी कहा था। द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म को

अपना मानना, वह संकल्प है—मिथ्यात्व है। आहाहा! भावकर्म अन्दर जो व्यवहार का विकल्प उठे, उसे पुद्गल का परिणाम कहकर वह तो निषेध किया है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** संकल्प करना परन्तु....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** संकल्प करना मिथ्यात्व है। नहीं कहा १०वें कलश में। नीचे लिखा है। १०वाँ कलश है न? **द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म...** भावकर्म में राग का विकल्प—व्यवहार आया। **आदि पुद्गलद्रव्यों में अपनी कल्पना करना...** यह शुभभाव भी वास्तव में पुद्गलद्रव्य है। यह तो अपने दोपहर में चलता है न! उसमें **अपनी कल्पना करना, उसे संकल्प कहते हैं...** यह मिथ्यात्व है। आहाहा! **और ज्ञेयों के भेद से ज्ञान में भेद मालूम होना, उसे विकल्प कहते हैं।** यह अनन्तानुबन्धी का अस्थिरता का विकल्प है। **ऐसा शुद्धनय प्रकाशरूप होता है।** इससे रहित। आहाहा!

**निर्विकल्पसमाधि के...** आहाहा! यह वर्तमान प्रगट पर्याय की बात है, हों! भगवान अनन्त अविनाशी स्वभावस्वरूप देवशक्ति—स्वयं देव है। आहाहा! ऐसे देव को प्राप्त करने में ऐसे संकल्प-विकल्प घातक हैं। आहाहा! ऐसी बात है। जयन्तीभाई! लोगों को लगे, दूसरा क्या हो? भाई! विद्यमान चीज़ है, उसे समझने के लिये पर की क्या अपेक्षा? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! विद्यमान प्रभु प्रगट है अन्दर। एक समय की पर्याय बिना का जो पदार्थ विद्यमान है, उसे जानने के लिये पर की—अविद्यमान की अपेक्षा कैसे हो सकती है? आहाहा! ऐसा स्वरूप है।

भगवान! तेरी महत्ता इतनी है, ऐसा कहते हैं। तेरी महत्ता इतनी है कि हीन अवस्था के आश्रय से तू प्राप्त न हो, ऐसा तू है। आहाहा! व्यवहार के विकल्प से भी तू प्राप्त न हो, ऐसी तेरी महत्ता है। इस महत्ता को तूने हीन कर दिया, भाई! कि यह राग की मन्दता व्यवहार हो तो प्राप्त हो, बापू! मर जायेगा तू, हों! तू महत्ता को मार डालता है। निर्विकल्प का घातक कहा न? आहाहा! ऐसा है यह, जयन्तीभाई! वाडावालों को तो बहुत कठिन लगे। आहाहा! 'वाडा बांधी बैठा रे अपना पंथ करने को।' यह तो परमात्मा का पंथ है। आहाहा! बहुत सरस बात!

तू विद्यमान चीज़ अनन्तदेव है न, प्रभु! पाठ में ऐसा कहा न? '**मुणि देउँ अणंतु**'

आहाहा! अविनाशी स्वभाव 'शुद्ध चेतनासिन्धु हमारो रूप है' शुद्ध चेतनासिन्धु। एक पर्याय भी नहीं यहाँ तो। शुद्ध चेतनासिन्धु '**मुणि देउँ अणंतु**' उसे तू जान। यह जानने में विघ्न करनेवाले विकल्प हैं, वे घातक हैं; इसलिए उन्हें छोड़ दे। आहाहा! देवचन्दजी! वस्तु तो ऐसी है। आहाहा!

**निर्विकल्पसमाधि के घातक....** आहाहा! भगवान जो अनन्त आनन्द का नाथ प्रभु, विद्यमान वस्तु, विद्यमान वस्तु सत् साहेब। आहाहा! सत्स्वरूप प्रभु विराजमान है, उसे प्राप्त करने के लिये निर्विकल्प समाधि का कारण है। निर्विकल्प समाधि से वह प्राप्त होता है। उस **निर्विकल्पसमाधि के घातक....** यह विकल्प शुभादि जो हों, देव-गुरु की भक्ति आदि राग, (वह घातक है)। आहाहा! प्रभु! तू विद्यमान चीज़ है न, सत् है न, सत् है न! परम सत् साहेब। उसे प्राप्त करने के लिये राग की उसे अपेक्षा नहीं होती। आहाहा! ऐसा कहते हैं। है? आहाहा! यह तो समझ में आये ऐसा है, हों! प्रवीणभाई! आहाहा!

भाषा कैसी की है! '**अनन्तम् देवम् मन्यस्व**' आहाहा! अविनाशी वस्तु... वस्तु... वस्तु... 'वस्तु व्होरजो रे दोशीडाने हाटे।' वहाँ वस्तु अन्दर पड़ी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! निर्विकल्प शान्ति द्वारा प्राप्त हो, उसे जान। बीच में विकल्प आवे, वे घातक हैं, उन्हें छोड़ दे। आहाहा! कठिन बातें। लो, यह बहुत आया तुम्हारे भावनगर, रविवार को आवे तो ऐसा आता है। मनसुखभाई! ऐसा है। आहाहा!

भाई! तू सत्स्वरूप है, प्रभु! सत् को असत् के आश्रय से प्राप्त किया जाये, यह कैसे हो सकता है? भाई! आहाहा! यह विकल्प आदि हैं, वे तो असत्स्वरूप हैं, त्रिकाली की अपेक्षा से। उनकी अपेक्षा से भले हों। आहाहा! और वास्तव में देव-गुरु-शास्त्र (की भक्ति) या पंच महाव्रत वह वास्तव में पुद्गल के परिणाम हैं। अपनी जाति के परिणाम कहाँ हैं वे? आहाहा! ऐसे विकल्पों को अन्तर सत् साहेब प्रभु प्राप्त करने में निर्विकल्प शान्ति के वे घातक हैं। आहाहा! उन्हें छोड़ और अनन्तदेव को जान। जानना, वह निर्विकल्प समाधि है। उससे '**मन्यस्व**' जाना। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें, इसलिए सम्प्रदाय को कठिन लगे, हों! बेचारों को। सोनगढ़िया ऐसा करे।

अरे! बापू! रहने दे, भाई! विपरीत मान्यता के फल, बापू! कठोर पड़ेंगे, भाई! सहन करना कठिन पड़ेंगे। समझ में आया? आहाहा!

सन्तों ने अमृत के समुद्र बहाये हैं। आहाहा! भगवान! तू कोई महा चीज़ है या नहीं? ऐसा कहते हैं। आहाहा! परम पदार्थ महा अनन्त जिसका नाश, ऐसी ध्रुव चीज़ है। आहाहा! उसे तू देवरूप से जान। आहाहा! जान, यह पर्याय निर्विकल्प समाधि है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान की पर्याय को यहाँ जान में डाला। यह राग और विकल्प से ज्ञात हो, ऐसा आत्मा नहीं है। आहाहा! भाई! तुझे कहाँ जाना है? आहाहा! झगड़ा-झगड़ा छोड़, प्रभु! सब। दुनिया चाहे जो कहे। आहाहा! नियमसार में कहा है न? दुनिया निन्दा करे। यह तो व्यवहार का नाश करते हैं, व्यवहार का लोप करते हैं। बापू! भाई! व्यवहार का लोप किये बिना निर्विकल्प समाधि प्रगट नहीं होगी। आहाहा! घातक है। साधक नहीं, घातक है। ले! आहाहा!

तीन लोक का नाथ महा परमात्मस्वरूप, साक्षात् स्वरूप, जिनस्वरूप। 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले जिन प्रवचन का मर्म।' आहाहा! पूर्ण अविकारी वीतरागस्वभाव का परमात्मा भाववाला, यह अनन्त है। नाश बिना की चीज़ है, ऐसा कहना है। आहाहा! ऐसे देव को तू 'मुण...' आहाहा! उसे जान। 'उसे जान' का अर्थ ही यह कि विकल्प से वह ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें! बापू! दुःखी हुआ है, भाई! अनन्त काल के दुःखी, दुःखी, दुःखी है। हैरान हो गया है। इस आनन्द के नाथ को पहुँचने के लिये प्रभु, रागरहित निर्विकल्प शान्ति— श्रद्धा-ज्ञान काम करेंगे। समझ में आया? आहाहा!

यह तीन लोक के नाथ की वाणी है। सन्त इस वाणी को... सर्वज्ञ के स्वभाव की बातें सन्त कर गये। आहाहा! भाषा प्रयोग की है। '**अनन्तम् देवम् मन्यस्व**' इस शब्द में... आहाहा! प्रभु! तू अविनाशी पदार्थ है न! ध्रुव वस्तु का अस्तित्व ऐसा अनन्त, ऐसे देव को जान, मान। आहाहा! उसे जानने-मानने के लिये व्यवहार के विकल्प घात करनेवाले हैं, उन्हें छोड़। जिसे तूने साधक किया था, उसे यहाँ बाधक है, ऐसा करके छोड़। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! जिसे परम आनन्द प्रगट करना है, और जो परमानन्द प्रगट होकर अनन्त काल रहे, ऐसी जिसे मोक्षदशा प्रगट करनी है। भाई!

उसके उपाय तो अलौकिक और अचिन्त्य ही होते हैं। आहाहा! यह संकल्प-विकल्प की व्याख्या हुई। आहाहा!

जिसमें संकल्प-विकल्प को पुद्गल के परिणाम कहे। व्यवहाररत्नत्रय को तो पुद्गल के परिणाम कहे। उन्हें तो पुण्य कहा और दूसरे प्रकार से उन्हें पाप भी कहा। आहाहा! 'पाप को पाप सब कहे परन्तु अनुभवीजन पुण्य को भी पाप कहे' योगसार में है। योगसार में आता है। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं। देव-गुरु-शास्त्र आदि की भक्ति, वह पुण्य के विकल्प हैं... आहाहा! अब यह लोग कहते हैं कि भक्ति से प्राप्त होता है। भगवान की-देव की भक्ति करो। प्रभु! मार्ग अलग, नाथ! तुझे सरल लगता हो परन्तु यह इस प्रकार से नहीं मिलता। आहाहा!

यहाँ तो देव-गुरु-शास्त्र को मानने का जो विकल्प है, सच्चे देव-गुरु-शास्त्र, हों! आहाहा! वह भी निर्विकल्प समाधि के घातक हैं। आहाहा! उसकी ओर से पहलू बदल और भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसके समीप में निर्विकल्पदशा से जा। ऐसी बात है, बापू! भगवान विराजता है अन्दर, भाई! विद्यमान चीज़ है। आहाहा! यह लोग ऐसा कहे, दया करो तो प्राप्त हो। अरे! बापू! यह बात तो कहीं रह गयी, भाई! तेरी दया कर तो प्राप्त हो। दया अर्थात्? पूर्णानन्द का नाथ अस्तिरूप से है, उसे उस प्रकार से स्वीकार। उसे राग से प्राप्त हो और अल्पज्ञपना मानना, यह तो उसकी हिंसा है, आहाहा! उसका अनादर है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** .... इस प्रकार से है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** इस प्रकार से है।

अब ऐसा उपदेश। इसमें सभारंजन किस प्रकार हो? आहाहा! बापू! लोगों का रंजन करने जायेगा (तो) तेरा आत्मा (का) घातक हो जायेगा। शास्त्र में यह है, अष्टपाहुड़ में। अष्टपाहुड़ में है। भाई में तो बहुत है, तारणस्वामी में। लोकरंजन। लोक को ठीक पड़े, ऐसी बातें कर। मर जायेगा। लोग प्रसन्न होंगे कि आहाहा! क्या बात की! व्यवहार से भी प्राप्त होता है, इससे भी प्राप्त होता है। एकान्त कहते हैं कि व्यवहार से नहीं। वे प्रसन्न-प्रसन्न हों। तू मर जायेगा।

**मुमुक्षु :** .... प्राप्त होता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धूल। हाँ कहे और यह सब बातें हैं, भाई! क्या करे? बापू! अरे रे! मिथ्या परिणाम, उसका फल भाई! कठोर है। समझ में आया? दुनिया में वर्तमान लोग मानेंगे। क्योंकि जो राग के, व्यवहार के रसिक हैं, उन्हें ये बात अच्छी लगे। यह अनेकान्त मार्ग कहा। देखा! वे तो कहते हैं व्यवहार से प्राप्त नहीं होता... व्यवहार से प्राप्त नहीं होता... एकान्त कहते थे। ऐई! भगवान! साक्षात् परमात्मा का विरह पड़ा। परन्तु साक्षात् प्रभु है, उसका पर्याय में विरह पड़ा, ऐसा कहते हैं।

**मुमुक्षु :** वह तो अपनी बात करे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, अपनी। आहाहा! तीन लोक के नाथ भगवान विराजते हैं। उनका तो विरह पड़ा, परन्तु प्रभु पूर्णानन्द का नाथ साक्षात् प्रभु विराजता है, उसे तू विकल्प का आदर करके उसका विरह करे। घात होता है, भाई! आहाहा! प्रवीणभाई! ऐसी बातें हैं, बापू! आहाहा! वस्तु यह है, भाई! दुनिया माने, न माने। इसे संख्या अधिक हो, न हो, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है कि बहुत माने। तेरी पण्डिताई एक ओर पड़ी रही। आहाहा! संकल्प-विकल्प का त्याग कर तो तेरा विरह छूटेगा, कहते हैं। आहाहा! परमात्मा विराजता है, उसमें से तू हट गया है। संसार कहा है। संसरण इति संसार। आहाहा! भगवान मोक्षस्वरूप है, अबन्धस्वरूप है। उसमें से तू हट गया है। हटकर विकल्प में आ गया, प्रभु! तेरे स्व का घात हो गया है। और उससे तू माने कि विकल्प से आत्मा को लाभ होता है। प्रभु! अटक जायेगा वहाँ, हों! अन्दर नहीं जा सकेगा। जिससे लाभ माने, उसे कैसे छोड़े?

**मुमुक्षु :** महिमा आयी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** महिमा आयी। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

वे तो कहते हैं कि दया पालो, व्रत करो, तप करो तो धर्म होगा। वे और कहे यात्रा करो, भक्ति करो, पूजा करो। अरे! प्रभु! सुन न, भाई! यह सब विकल्प है, भाई! अन्तर निर्विकल्प समाधि में यह घातक हैं। उन्हें तू साधक माने, भाई! भटक मरेगा। आहाहा! वहाँ किसी की सिफारिश नहीं चलेगी। वस्तुस्थिति है वैसी रहेगी। तू बदलना

चाहे तो कहीं बदल नहीं जायेगी। आहाहा! बहुत सरस गाथा! २३। मनसुखभाई! दो व्यक्ति आये हैं। हीरालाल नहीं? हीरालाल नहीं होंगे। बाहर गाँव हैं।

**हे प्रभाकर भट्ट...** योगीन्द्रदेव कहते हैं, सन्त कहते हैं। आहाहा! तू इस विकल्प को छोड़, प्रभु! चाहे जिस जाति का हो। आहाहा! भगवान की भक्ति का हो, भगवान को मानने का हो। उसे छोड़। वह परसन्मुख की दशा है। स्वसन्मुख जाने के लिये, वह घातक है। आहाहा! ऐसी दशा की ओर ढला हुआ विकल्प, ऐसे दशा में जाने के लिये घातक है। आहाहा! समझ में आया? और अन्यत्र कहा है, ऐसा कि **दूसरी जगह भी कहा है। इन्द्रियों में जीभ प्रबल होती है,....** इन्द्रिय में रस की गृद्धि प्रबल है। उसे जीतना, कहते हैं। **ज्ञानावरणादि आठ कर्मों में मोहकर्म बलवान होता है,....** पर में सावधानी, यह जोरवाला है। **पाँच महाव्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत प्रबल है,....** ब्रह्मचर्य। ब्रह्म अर्थात् आनन्द में रमना। **और तीन गुप्तियों में से मनोगुप्ति पालना कठिन है।** मन के विकल्पों को हटाकर अन्दर स्वरूप में गुप्त हो जाना। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! **ये चार बातें मुश्किल से सिद्ध होती हैं।** लो! आहाहा! २२ हुई न यह? २२ हुई।

गाथा - २३

अथ वेदशास्त्रेन्द्रियादिपरद्रव्यालम्बनाविषयं च वीतरागनिर्विकल्पसमाधिविषयं च परमात्मानं प्रतिपादयन्ति –

२३) वेयहिं सत्थहिं इंदियहिं जो जिय मुणहु ण जाइ।
णिम्मल-झाणहँ जो विसउ सो परमप्पु अणाइ।।२३।।

वेदैः शास्त्रैरिन्द्रियैः यो जीव मन्तुं न याति।
निर्मलध्यानस्य यो विषयः स परमात्मा अनादिः।।२३।।

वेदशास्त्रेन्द्रियैः कृत्वा योऽसौ मन्तुं ज्ञातुं न याति। पुनश्च कथंभूतो यः। मिथ्याविरति-प्रमादकषाययोगाभिधानपञ्चप्रत्ययरहितस्य निर्मलस्य स्वशुद्धात्मसंवित्तिसंजातनित्यानन्दैक-सुखामृतास्वादपरिणतस्य ध्यानस्य विषयः। पुनरपि कथंभूतो यः। अनादिः स परमात्मा भवतीति हे जीव जानीहि। तथा चोक्तम् –''अन्यथा वेदपाण्डित्यं शास्त्रपाण्डित्यमन्यथा। अन्यथा परमं तत्त्वं लोकाः क्लिश्यन्ति चान्यथा।।'' अत्रार्थभूत *एवं शुद्धात्मोपादेयो अन्यद्धेयमिति भावार्थः।।२३।।

---

आगे वेद, शास्त्र, इन्द्रियादि परद्रव्यों के अगोचर और वीतराग निर्विकल्प समाधि के गोचर (प्रत्यक्ष) ऐसे परमात्मा का स्वरूप कहते हैं –

जो वेद इन्द्रिय शास्त्र से भी ज्ञात होता है नहीं।
बस विषय निर्मल-ध्यान का ना आदि परमातम वही।।२३।।

अन्वयार्थ :- [वेदैः] केवली की दिव्यवाणी से [शास्त्रैः] महामुनियों के वचनों से तथा [इन्द्रियैः] इन्द्रिय और मन से भी [यः] जो शुद्धात्मा [मन्तुं] जाना [न याति] नहीं जाता है अर्थात् वेद, शास्त्र – ये दोनों शब्द अर्थस्वरूप हैं, आत्मा शब्दातीत है, तथा इन्द्रिय, मन विकल्परूप हैं और मूर्तीक पदार्थ को जानते हैं, वह आत्मा निर्विकल्प है, अमूर्तीक है, इसलिए इन तीनों से नहीं जान सकते। [यः] जो आत्मा [निर्मलध्यानस्य] निर्मल ध्यान के [विषयः] गम्य है, [स] वही [अनादिः] आदि-अंतरहित [परमात्मा] परमात्मा है।

---

* पाठान्तर :- एव - एवं

**भावार्थ :- मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, योग-इन पाँच तरह आस्त्रवों से रहित निर्मल निज शुद्धात्म के ज्ञानकर उत्पन्न हुए नित्यानंद सुखामृत का आस्वाद उस स्वरूप परिणत निर्विकल्प अपने स्वरूप के ध्यानकर स्वरूप की प्राप्ति है। आत्मा ध्यानगम्य ही है, शास्त्रगम्य नहीं है, क्योंकि जिनको शास्त्र सुनने से ध्यान की सिद्धि हो जाए, वे ही आत्मा का अनुभव कर सकते हैं। जिन्होंने पाया, उन्होंने ध्यान से ही पाया है, और शास्त्र सुनना तो ध्यान का उपाय है, ऐसा समझकर अनादि अनंत चिद्रूप में अपना परिणमन लगाओ। दूसरी जगह भी 'अन्यथा' इत्यादि कहा है। उसका यह भावार्थ है, कि वेद शास्त्र तो अन्य तरह ही हैं, नय प्रमाणरूप हैं, तथा ज्ञान की पंडिताई कुछ और ही है, वह आत्मा निर्विकल्प है, नय-प्रमाण-निक्षेप से रहित है, वह परमतत्त्व तो केवल आनन्दरूप है, और ये लोक अन्य ही मार्ग में लगे हुए हैं, सो वृथा क्लेश कर रहे हैं। इस जगह अर्थरूप शुद्धात्मा ही उपादेय है, अन्य सब त्यागने योग्य हैं, यह सारांश समझना।।२३।।**

## गाथा - २३ पर प्रवचन

२३। **आगे वेद, शास्त्र, इन्द्रियादि परद्रव्यों के अगोचर और वीतराग निर्विकल्प समाधि के गोचर ( प्रत्यक्ष ) ऐसे परमात्मा का स्वरूप कहते हैं :—** आहाहा!

**२३) वेयहिं सत्थहिं इंदियहिं जो जिय मुणहु ण जाइ।**
**णिम्मल-झाणहँ जो विसउ सो परमप्पु अणाइ।।२३।।**

आहाहा! यह परमात्मा चिदानन्द प्रभु एक समय की पर्याय बिना की चीज़ जो है, वह केवली और दिव्यध्वनि से जानी नहीं जा सकती, ऐसी वह चीज़ है। है? उसमें है या नहीं? वेद अर्थात् वीतराग की वाणी। वे (अन्यमत के) वेद नहीं। आहाहा!

**अन्वयार्थ :- केवली की दिव्यवाणी से...** आहाहा! और **महामुनियों के वचनों से....** पहले देव की वाणी ली, फिर गुरु की ली। दोनों से आत्मा समझ में आये, ऐसा नहीं है, कहते हैं। आहाहा! उसमें आया न कि भाई! भगवान को सुनना वह भी इन्द्रिय का विषय है। आहाहा! जैसे स्त्री विषय है, वैसे वाणी विषय है। खोटे कर्म कर डाले,

ऐसा वे लोग कहते हैं। भगवान! सुन न, भाई! उस वाणी पर लक्ष्य जाये तब उसे राग होगा। परद्रव्य पर लक्ष्य जायेगा... आहाहा! और वह वाणी सुनकर यहाँ ज्ञान की पर्याय हुई, वह तो स्वयं से हुई है, उससे नहीं, यह ज्ञान, वह ज्ञान नहीं है। वह परसत्तावलम्बी ज्ञान है। वह ज्ञान नहीं है। आहाहा!

वीतराग की वाणी कान में पड़ी और उस काल में अपने ज्ञान की पर्याय अपने से हुई। तथापि वह पर्याय वास्तविक ज्ञान नहीं। वह पर्याय—ज्ञान की पर्याय बन्ध का कारण है। आहाहा! परसत्तावलम्बी है। आहाहा! यह वाणी और वाणी के ज्ञान से स्वयं प्राप्त हो, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसमें कहा है न? बुद्धि शास्त्र में जाये, तो (वह) व्यभिचारिणी है। पद्मनन्दि पंचविंशति। भाई! परसन्मुख का झुकाव, वह व्यभिचार है। आहाहा! परपदार्थ के संग में वृत्ति गई, वह व्यभिचार है। आहाहा! स्वसन्मुख में जाने के लिये वीतराग की वाणी और गुरु की वाणी काम नहीं करती, कहते हैं। है?

**मुनियों के वचनों से तथा इन्द्रिय और मन से भी....** इन्द्रिय और मन से भी **शुद्धात्मा जाना नहीं जाता है,...** आहाहा! भगवान को, वाणी को भी इन्द्रिय कहा है। समयसार ३१ गाथा। **'इंदिय जिणित्ता'** द्रव्य इन्द्रिय, भावेन्द्रिय और उसका विषय, उस ओर का लक्ष्य छोड़ दे। उससे नहीं मिलेगा। यह बात लोगों को कठिन पड़ती है। भगवान की दिव्यध्वनि से लाभ नहीं होता। ऐई! आहाहा! महा गणधरों की शास्त्र की रचना अर्थरूप। अर्थरूप भगवान ने कहा और श्रुतरूप रचा गणधर ने। इसलिए दो शब्द हैं अन्दर, देखो! **अर्थात् वेद, शास्त्र, ये दोनों शब्द अर्थस्वरूप हैं,....** है न? शब्द और अर्थ स्वरूप है न यह? वेद अर्थात् वाणी और शास्त्र। वास्तव में दिव्यध्वनि की वाणी शब्द सूत्ररूप है और गणधरों ने उसके अर्थ रचे हैं, वह अर्थरूप है। दिव्यध्वनि अर्थरूप है, और शास्त्र रचे, वे शब्दरूप है। आहाहा! सूत्ररूप है। क्या कहा यह?

दिव्यध्वनि में अर्थरूप बात आती है और शास्त्र रचे वे सूत्ररूप है। वे सूत्ररूप या अर्थरूप दोनों से आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं है, कहते हैं। आहाहा! ऐसा भगवान निरपेक्ष वस्तु है, विद्यमान चीज़ है। आहाहा! सत् है, उसे ऐसे असत् के आश्रय की आवश्यकता नहीं। आहाहा! उससे असत् आश्रय से सत् ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में

आया? कहो, ऐसा कठिन लगे न लोगों को। लोगों को अभ्यास नहीं। सत्य क्या है, इसकी (खबर नहीं) और ऊपर से एकदम गोला मारना। व्यवहार से प्राप्त होता है, व्यवहार पहले होता है, व्यवहार निसरणी है, अशुभ टाले, फिर शुभ आवे, फिर शुभ टालकर पश्चात् शुद्ध होता है। ऐसी निसरणी है यह। एक व्यक्ति ऐसा कहता था। अरे! भगवान! यह शुभ को भी छोड़ने की बात है यहाँ तो। साधन है तो छोड़ने का क्यों कहे? आहाहा! व्यवहार का विकल्प जितने हैं, वह निश्चय स्वभाव के आश्रय से होती निर्विकल्प समाधि, उसकी वह घातक है। इसलिए वाणी और अर्थ से या अर्थ और शब्द से (प्राप्त नहीं होता)। आहाहा! समयसार में ऐसा कहा, ४१५ गाथा। अन्तिम अर्थ। अर्थ में फिर अर्थ यह तू। यह नहीं। ४१५ गाथा है। समयसार की अन्तिम। आहाहा! शब्द और अर्थ से जानकर अर्थ में स्थिर हो। भगवान! यह अर्थ है वहाँ, हों! आहाहा!

**वेद, शास्त्र, ये दोनों शब्द अर्थस्वरूप हैं, आत्मा शब्दातीत है,...** भगवान तो शब्द से अतीत है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** उपदेश तो शब्द से दिया जाता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कौन करे उपदेश? बापू! यह तो सब बातें हैं। इसलिए कल डाला था न? यह परक का अर्थ क्या, यह कहा भाई ने। निमित्तपरक। शब्द देखा था भाई ने। उपादानवादी घोर निमित्तपरक... करते हैं। घोर निमित्त का आश्रय लेते हैं। अरे! भगवान! ऐसा कि ऐसे मकान (मन्दिर) बनाकर और निमित्त द्वारा लोगों को खींचना है। उपादान... ऐसा कहे। अरे! प्रभु! भगवान! भाई! उसे कठिन पड़ेगा, बापू! और यह शिक्षण शिविर लगाना, धर्मचक्र निकालना, यह पण्डित जहाँ-तहाँ जाकर भाषण दे, धन्नालालजी और यह सब। हम पूछते हैं, उसका जवाब वाणी द्वारा तुम देते हो। तो वाणी का आश्रय लिया या नहीं? निमित्त द्वारा तुम्हें काम करना और कहना कि निमित्त से कुछ होता नहीं। यह कहाँ (बात) है? आहाहा! जहाँ विकल्प जिसमें नहीं, वहाँ फिर वाणी कहाँ से आयी? वाणी के काल में वाणी निकले, प्रभु!

अरे! प्रभु! कठिन, बापू! क्या हो? आहाहा! मिथ्यात्व का (फल) कठोर है, बापू! निगोद कहा है, भाई! एक व्यक्ति कहता था कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहे, उनका न

माने वह निगोद में जायेगा, ऐसा कहे ? अरे ! भगवान ! अरे ! तू ऐसा न कह, भाई ! ऐसा कि वे ऐसा कहते हैं कि कुन्दकुन्दाचार्य का न माने, उसे वे कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि निगोद में जाओगे, ऐसा कहता है। भाई ! तू खींचतान न कर। आहाहा ! ... प्राप्त नहीं होता ? कहते हैं कि, शास्त्र सुनना, वह तो ज्ञान का उपाय निमित्त लक्ष्य में आया इतना। बाकी उससे आत्मा प्राप्त होता है, (ऐसा नहीं है)। आहाहा ! वाणी जड़ पुद्गल की पर्याय, 'तद् विकारो' नहीं आया ? नियमसार। तद् विकारो। अष्टपाहुड़, अष्टपाहुड़। शब्द का विकार है, वह वाणी तो। आहाहा ! अन्तिम गाथा। भावपाहुड़ या बोधपाहुड़ दोनों में से एक अन्तिम में है। उससे प्राप्त हो, ऐसा नहीं। आहाहा !

**आत्मा शब्दातीत है, तथा इन्द्रिय, मन विकल्परूप हैं,....** अब उससे रहित। **और मूर्तिक पदार्थ को जानते हैं, वह आत्मा निर्विकल्प है,...** आहाहा ! वह **अमूर्तिक है, इसलिए इन तीनों से नहीं जान सकते।** शब्द से, अर्थ से और मन के संकल्प तथा इन्द्रिय से, इनसे आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा ! **जो आत्मा निर्मल ध्यान के गम्य है,...** आहाहा ! देखो, लो ! **निर्मल ध्यान के गम्य है,...** निर्मल अविकारी सम्यग्दर्शन-ज्ञान की पर्याय को वह गम्य है। आहाहा ! समझ में आया ? इसके गम्य नहीं तो उसके गम्य है, ऐसा कहा न ? '**निर्मलध्यानस्य यो विषयः**' आहाहा ! सम्यग्दर्शन-ज्ञान वीतरागी पर्याय का विषय वह वस्तु है। आहाहा ! **वही आदि-अन्त रहित परमात्मा है।** उसे हम परमात्मा कहते हैं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)